श्री भागवत दर्शन भागवती कथा, खंड ७८

भक्तवत्सल श्याम

श्री भागवत दर्शन

भागवती कथा

खण्ड ७८

गीतावार्ता (१०)

व्यासशास्त्रोपवनतः सुमनांसि विचिन्विता ।
कृतं वै प्रभुदत्तेन भागवतार्थ सुदर्शनम् ॥

—:०:—

लेखक

श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी

★

प्रकाशक

सङ्कीर्तन-भवन
प्रतिष्ठानपुर (भूसी) प्रयाग

—:*: संशोधित मूल्य २ ० रुपया

प्रथम संस्करण
१००० प्रति]

श्रावण
२०२७

[मू० १.६५ पै०

मुद्रक—वंशीधर शर्मा; भागवत प्रेस, ८५२ मुट्ठीगंज, प्रयाग

विषय-सूची

अपनी निजी चर्चा।

[६]

मास्मिन् महाराज कृथाः स्मचिन्ताम्,
निशामयास्मद्वच आदृतात्मा ॥
यद्ध्यायतो दैवहतं नु कर्तुम्,
मनोऽतिरुष्टं विशते तमोऽन्धम् ॥⊛
(श्री भाग० ४ स्क० १६ अ० ३४, श्लोक)

छप्पय

दैव न चाहै जाइ ताइ चाहै जो करनो।
मौति न चाहै जाइ फेरि हू चाहै मरनो॥
नहीं मरिहैं कबहुँ, दुराग्रह अधिक करिहैं।
क्रोध माहिँ मरि जाइँ मोह मद माहिँ फसिहैं॥
निन्दा इस्तुति त्यागि भय, मान अमान समान लखि।
प्रभु की सुख दुख देनि हैं, करै काज हिय श्याम रखि॥

महाराज पृथु ने सौ अश्वमेध यज्ञ करने का संकल्प किया था, किन्तु इन्द्र के बार-बार विघ्न डालने पर उनका संकल्प पूरा नहीं हुआ था, इससे महाराज दुखित हुए। इस पर—उन्हें समझाते हुए ब्रह्माजी कहने लगे—"हे महाराज! आप का यह अनुष्ठान पूरा नहीं हुआ, निर्विघ्न-समाप्त नहीं हुआ, इस विषय में आपको चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। हम जो कहते हैं उसे आदर पूर्वक स्वीकार करो! देखो, जो

कर्म क्या है, अकर्म क्या है, इस विषय में बड़े-बड़े विद्वान् मोहित हो जाते हैं। जिस बात की एक स्थान पर निंदा की जाती है, उसी बात की दूसरे स्थान पर दूसरे ऋषि प्रशंसा करते है। गीता में भगवान् ने बार-बार इस बात पर बल दिया है, कि क्षत्रिय के लिये धर्म युद्ध से बढ़कर दूसरा कोई श्रेयस्कर कार्य ही नही। युद्ध के अवसर को क्षत्रिय के लिये छोड़ना अधर्म है, शत्रु के सम्मुख रण से भागना पाप है, किन्तु श्रीकृष्णचन्द्र अपनी मथुरा पुरी को कालिय यवन से घिरी देखकर रण को छोडकर भाग ही गये। जरासंध की सेना के भय से अपनी जन्म भूमि को ही छोड़कर समुद्र में जा बसे। पिता की उचित अनुचित कैसी भी आज्ञा हो उसका पालन करना धर्म है, यही समझकर भगवान् परशुराम जी ने अपनी जननी का–सगी माता का–सिर काट लिया। इसके विपरीत प्रह्लादजी ने पग-पग पर पिता की आज्ञा का उलङ्घन किया और फिर भी वे दोषी नहीं ठहराये गये। प्रातःस्मरणीय परम पुण्यवान् भागवतों में उनकी सबसे प्रथम गणना की गयी है। गुरु की आज्ञा का पालन अनुचित उचित का विना विचार किये करना चाहिये यह सिद्धान्त है, किन्तु महाराज बलि ने गुरु की आज्ञा का उल्लंघन ही किया। इस प्रकार देश, काल तथा पात्र के अनुसार यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि इस समय में, इस देश में इसके द्वारा कौन-सा कार्य उचित है कौन-सा अनुचित।

जब भगवान् वाराह हिरण्याक्ष से लडने लगे तब उन्होंने

मनुष्य विधाता के द्वारा बिगाड़े हुए कार्य को बनाने का आग्रह करता है, उसे पूरा करने का दुराग्रह करता है, उसका मन अत्यन्त क्रोध मे भर कर भयकर मोह मे फँस जाता है।

हिरण्याक्ष से कहा—"जो अपनी की हुई प्रतिज्ञा का पालन नहीं करता वह असभ्य है।" (यः स्वां प्रतिज्ञां नाति पिपर्त्यसभ्यः)

इसके विपरीत ब्रह्माजी महाराज पृथु से कहते हैं—"राजन्! तुमने सौ अश्वमेध करने की प्रतिज्ञा की थी, किन्तु इन्द्र इसमें बारम्बार विघ्न डाल रहा है। इससे होगा क्या, आप सौ पूरा करने का आग्रह करेंगे, देवता अधिक दुराग्रही होते हैं, वह उसमें पाखण्ड का प्रचार करेगा। जनता पाखंडों की ओर अधिक खिंचती है, अतः इससे पाखंडों का प्रचार होगा। अतः आप सौ यज्ञों के पूरा करने का आग्रह छोड़ दें। इन्द्र के ही मन की बात होने दें। जिस संकल्प से पाखंड धर्म का प्रचार होता हो, उसे बन्द करदे उसे पूरा होने का आग्रह न करे।"

इस प्रकार जीवन में ऐसे अनेक प्रसंग आ जाते हैं, जहां दो विरोधी धर्म आकर मनुष्य को किंकर्तव्य विमूढ बना देते है। ऐसे समय क्या करना चाहिये क्या न करना चाहिये इस विषय में शास्त्रकारों ने चार बातें बतायी हैं। जब कभी ऐसी परिस्थिति आ जाय तो देश, काल तथा पात्र का विचार करते हुए पहिले तो यह सोचे इस विषय में वेद क्या कहता है, फिर ऋषियो ने ऐसे समय में स्मृतियों में क्या आज्ञा दी है। जैसी परिस्थिति हमारे सम्मुख है, ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर सदाचारी ऋषियों ने आप्त पुरुषों ने कौन-सा मार्ग अपनाया था। बड़े लोगों ने ऐसी परिस्थिति में क्या किया था; जब ये तीनों मिल जायं तो फिर देखे हमारा विशुद्ध अन्तरात्मा क्या कहता है, अन्तरात्मा की क्या पुकार है।

३६ दिन के विशुद्ध अनशन के समय मेरे सम्मुख भी यही स्थित आ गयी थी। अनशन के पूर्व मैंने अपनी जानकारी में किसी प्रकार के दंभ से यह संकल्प नहीं किया था। मैं मरना ही

चाहता था, यह दूसरी बात है, कि उसमें गौ माता के प्रति प्रेम कितना था और गौ रक्षा का श्रेय लूटने की भावना कितनी थी। दौड़ धूप में और तूफानी दौरे में रात्रि-दिन कार्य व्यस्त रहने में इसका निर्णय करना कठिन था। किन्तु अब तो कोई कार्य नहीं था, अब तो चौबीसो घंटे पड़े-पड़े सोचने का ही काम था। जब से यह अनशन अनुष्ठान आरम्भ हुआ था तब से जप, यज्ञ, अखण्ड कीर्तन, भागवत का अखंड पाठ आदि धार्मिक कृत्य होते ही रहते थे इनके बिना मेरा मन ही नहीं लग सकता था, मैं रह ही नहीं सकता था। देश भर में मेरे स्नेही, शुभचिंतक आत्मीय बन्धु थे उनकी भी दृष्टि मेरे ऊपर लगी थी, निरन्तर बहुत से बन्धु मुझे देखने दूर-दूर से आते। सदा एक प्रकार का मेला-सा ही लगा रहता। जो साधनों के अभाव से या अन्य किसी विवशता से यहाँ नहीं आ सकते थे, वे जहाँ थे, वहीं से जप, अनुष्ठान द्वारा अपनी मेरे प्रति मंगल कामना प्रेषित करते रहते थे। मेरा चिंतन चलता रहता। जिस दिन तक मृत्यु समीप नहीं आई थी, उस दिन तक तो मरने का निश्चय ही था। किन्तु घुटनों तक शरीर शून्य होकर भी मृत्यु नहीं आयी, तब मेरा चिंतन विपरीत दशा में हो गया।

मैं सोचने लगा—"मानलो शून्यता घुटनों से ऊपर न बढ़ी और जैसी दशा मेरी अब है वैसी ही और कुछ दिन रह गयी, तो सरकारी आदमी मुझे निश्चय ही अस्पताल में ले जायँगे। अस्पतालों के वातावरण से मुझे बड़ा भय लगता है। वहाँ जो कीटाणु मारने को-स्वच्छता के लिये जिस चूर्ण (पाउडर) का छिड़काव होता है, उससे जो निवास स्थल धोये जाते हैं, उसकी उत्कट गंध मुझे बहुत ही बुरी तथा दुःखद लगती है। किसी को देखने इन आधुनिक चिकित्सालयों (अस्पतालों) में मुझे विवश

होकर जाना पड़ता है, तो उस दुर्गन्धि से मुझे महान् क्लेश होता है। मच्छड़ मारने की जो ओषधि छिड़की जाती है, जो कूओं के कीड़े मारने को जल में डाली जाती है उसकी गंध भी मुझे अत्यंत व्यथित करती है। और तो और स्त्री पुरुष अपने शरीरों में जो भस्मी (पाउडर) रमाते हैं, उससे भी मुझे बड़ी घृणा है। अनशन के दिनों में तो मेरी घ्राण शक्ति इतनी प्रबल हो गयी थी कि भस्मी रमाये (पाउडर लगाये) कोई भी स्त्री पुरुष दूर भी आता, तो मै व्यथित हो उठता, इसलिये ऐसे किसी व्यक्ति को मै अपने पास नहीं आने देता था। अन्त में तो मैने सरकारी आदमियों से कहकर प्रहरी लगा दिये थे, कि कोई मेरे समीप न आने पावे खिड़की से ही मुझे देख लें।"

सरकारी चिकित्सक मेरी रेख देख को नित्य आते। मेरे एक दो साथियों को ऐसी दशा में वे उठाकर ले भी गये थे। सरकारी आदमियों ने बार-बार कहा भी था, हम किसी भी दशा में ब्रह्मचारीजी को मरने न देंगे। अस्पताल की गाड़ी बार-बार मेरे यहां आती। मैं सोचने लगा-अब मैं पैरों से चल तो सकूंगा नहीं। जब घुटनों तक ये शून्य हो गये हैं, तब चिकित्सक इन्हें इतना काट देंगे, नली से मेरे मुख में दूध पहुँचावेंगे। सुइयों द्वारा फलशर्करा (ग्लूकोस) पहुँचावेंगे। हाय! मैं उस दुर्गति को कैसे सहूँगा। सबसे अधिक व्यथित तो मुझे दुर्गन्धयुत चूर्ण की वह स्मृति कर रही थी। न जाने कैसे मेरी घ्राणशक्ति उस अनशन से ऐसी उत्कट हो गयी थी इस विषय की मुझे एक कहानी स्मरण हो आयी।

व्रज में हमारे महावन का ही एक छोटा-सा जाट राजा था। उसकी घ्राण शक्ति ऐसी थी, कि वह तनिक भी दुर्गन्ध को सहन नहीं कर सकता था। इसका शौचालय नित्य इत्र से धोया जाता

था। उसका महल बहुत अधिक स्वच्छ रखा जाता था, कहीं भी किसी प्रकार की गंध न आने पावे इसका सभी सेवक सर्वदा बड़ी तत्परता से ध्यान रखते।

जब अंगरेजों का दिल्ली दरबार लगा तो उन्हें भी बुलवाया गया। दिल्ली की सड़कों को बहुत ही सावधानी से स्वच्छ किया गया। सैकड़ों छिड़काव करने वाले (भिस्ती या सक्के) चर्म थैलों (मशकों) से छिड़काव कर रहे थे। हमारे ये राजा साहब गये तो इन्होंने वहाँ नाक बन्द कर ली। लोगों ने पूछा—"महाराज, क्या हुआ ?"

राजा ने कहा—"दुर्गन्ध आ रही है।"

लोगों ने पूछा—"यहाँ तो इतनी स्वच्छता है दुर्गन्ध किस वस्तु की आ रही है ?"

राजा ने कहा—"अंडी के तेल की दुर्गन्ध आ रही है।"

लोगों ने बहुत पता लगवाया। पता लगाते-लगाते यह पता चला कि जिन चर्म थैलों (मशकों) से छिड़काव हो रहा था, वे एक दिन पूर्व अंडी के तेल से चुपड़ी गयीं थीं।

उनकी इतनी भारी घ्राणशक्ति से एक अधिकारी अंगरेज को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने परीक्षा के लिये उनके सामने से मल भरी हुई टोकनियाँ निकलवायी उसी समय उनकी मृत्यु हो गयी।

मेरी घ्राणशक्ति उतनी तो तीव्रतम नहीं हुई थी, किन्तु तीव्रतर अवश्य हो गयी थी। एकदिन मेरे अत्यन्त प्रेमी एक महामंडलेश्वर मुझसे मिलने गये थे। उन्होंने साबुन से स्नान करके भस्मी लगायी होगी वे मेरे पास जितनी देर बैठे रहे, मुझे बड़ी व्यथा होती रही। इसलिये मेरे साथी मेरे रक्षक बड़ी सावधानी बरतते थे, किसी को भी भस्मी रमाये मेरे पास नहीं आने देते। रात्रि

में अस्पताल वाले मुझे उठा न ले जायं, इसके लिये रात्रि में बहुत से स्वयं सेवक आकर मेरे चारों ओर सोते और पहरा देते थे।

मेरा चिंतन निरन्तर हो रहा था, मृत्यु मुझे प्रत्यक्ष अपने चारों ओर मड़राती हुई दिखायी देती थी। मुझे बार-बार यह सुनायी देता 'जीवन्नरो भद्र शतानि पश्यति' यदि मनुष्य जीवित बना रहे, तो संभव है सैकड़ों मंगलों के देखने का उसे सुअवसर प्राप्त हो जाय। यह मेरा भ्रम था, या मैं मृत्यु से भयभीत हो गया था, कुछ निर्णय ही नहीं कर पा रहा था।

मैंने मन्थन से ऐसा समझा गो माता के प्रति मेरा जो प्रेम है सो तो है ही। मुझे श्रेय की भूख अधिक है। मै चाहता हूँ मर कर भी मैं अमर हो जाऊँ। गोरक्षकों में मेरा ही प्रधान नाम हो। सब लोग यही कहें उन्हीं के कारण गो हत्या बन्द हुई।

यह श्रेय की भूख ऐसी उत्कट होती है, कि प्राणी को कहाँ से कहाँ ले जाती है। अरे इस इतने बड़े संसार में किसकी गणना है। लोग कहते हैं—अमुक काम करने से वे इतिहास में अमर हो जायंगे। इतिहास किसे अमर करता है, जीव का मिथ्याभिमान ही है। हमारे इस आंदोलन में श्रेय का अभिलाषी मै अकेला ही नहीं था, मेरे और स्नेही बन्धु थे। वे चाहते थे हमें श्रेय प्राप्त हो, किन्तु श्रेय उसी को प्राप्त होता है, जिसे भगवान् श्रेय देना चाहें नहीं तो श्रेय के लिये संसार मैं कौन लालायित नहीं होता। श्रेय की चाह सभी को है। जो श्रेय नहीं चाहते निःस्वार्थ भाव से सेवा करते हैं, उन महात्माओं को मैं शिर से प्रणाम करता हूँ।

जब श्रेय की ही बात चल पड़ी तो मुझे एक बात याद आ गयी। यह उन दिनों की बात है, जब हम मथुरा में सत्याग्रह करने वाले थे और हमें सफलता मिल चुकी थी। लखनऊ में या

तो कर चुके थे या करने वाले थे। गो हत्या निरोध समिति की ख्याति बढ़ गयी थी। मैं वृन्दावन में रामदास शास्त्री के यहाँ चार सम्प्रदाय में ठहरा हुआ था। तभी बम्बई के एक सुप्रसिद्ध उद्योगपति मुझसे मिलने आये। उन दिनों वे गोरक्षादि ऐसे धार्मिक कार्यों में सक्रिय भाग ले रहे थे। एक धार्मिक नेता के प्रति उनकी तब अनन्य श्रद्धा थी। मुझसे उन्होंने कहा—"महाराज, हम चाहते हैं, सब मिल कर काम करें।"

मैंने कहा—"सेठजी ! इसमें दो मत होने की कौन-सी बात है। आप जैसा कहेंगे वैसा हम करेंगे।"

वे बोले—"अच्छा गो हत्या निरोध समिति के आप तो जैसे हैं, वैसे ही अध्यक्ष बने रहें मंत्री लाला हरदेव सहाय जी हैं ही एक अमुक को और बना लें। और प्रधान संरक्षक उन (धार्मिक नेता) को बना दें।"

मैंने कहा—"बहुत अच्छा, ऐसा ही करेंगे।"

सेठजी बोले—"एक बात और करनी पड़ेगी।"

मैंने पूछा—"वह कौन सी ?"

वे बोले—"स्वयं सेवकों के जो बिल्ले बनाये जायेंगे, जिसे प्रत्येक स्वयं सेवक अपनी छाती पर लटकाये रहेगा उसमें अमुक व्यक्ति का चित्र रहेगा। उनके चित्र वाले बिल्ले लगाना अनिवार्य होगा।"

मैंने कहा—"सेठजी, यह बात तो आपने बहुत ही बढ़िया कही। उनका चित्र अवश्य रहना चाहिये, किन्तु मेरा एक सुझाव और है ?"

वे बोले—"कौन-सा सुझाव ?"

मैंने कहा—"हमारे साथ तो आर्यसमाजी भी हैं। आर्यसमाजियों का कहना है, कि गोरक्षा आंदोलन के आदि प्रवर्तक

स्वामी दयानन्दजी सरस्वती हैं, अतः उनका आग्रह होगा कि एक स्वामी जी का भी चित्र होना चाहिये। कुछ लोग मालवीय जी को आंदोलन प्रवर्तक मानते हैं अतः उनका भी चित्र रहना चाहिये। कुछ लोग हासानन्द जो को मानते हैं, जो गोहत्या बन्द कराने को अपने साथ तारकूल रखते और नेताओं के मुख पर तारकूल पोत देते थे। श्री चित्तरंजनदास, महामहना मालवीय तक के मुख उन्होंने काले किये थे उनका भी चित्र रखना आवश्यक है। ये संघ वाले कहते हैं, हमने गोरक्षा के समर्थन में इतने अधिक हस्ताक्षर संग्रह कराये कि संसार में आज तक किसी भी धार्मिक प्रश्न पर इतने हस्ताक्षर संग्रह नहीं हुए, अतः वे भी डा० हेडगेवार और श्री गुरुजी गोलवलकर के चित्रों का आग्रह करेंगे। लाला हरदेव सहाय के चित्र की भी कुछ लोग मांग कर सकते हैं और सेठजी अनुचित न समझें तो मैंने भी कुछ न कुछ काम किया है आप उचित समझे तो मेरा भी चित्र बिल्ले में रहना चाहिये।"

मेरी बात सुनकर सब लोग हँस पड़े। सेठजी कुछ भी नहीं बोले, उन्होंने चुपचाप अपनी छड़ी उठायी और दूर से ही मुझे हाथ जोड़ कर अपनी गाड़ी में जा बैठे।"

सो श्रेय का भूत मेरे ही सिर पर सवार नहीं था। मेरे और भी भाई थे। परन्तु मै अपनी निजी चर्चा ही लिख रहा हूँ, इसलिये उनके सम्बन्ध में कुछ भी न कहूँगा।

कुछ लोग चाहते थे। इस चढ़े हुए तवे पर चुनाव की रोटी सेककर इस सरकार पर अपना अधिकार जमा लें। मै इसके सर्वथा विरुद्ध था, किन्तु मैं तो मृत्यु शैया पर मरणासन्न पड़ा था, अपना विरोध कैसे प्रकट करूं। कुछ लोग पद के लिये वाद-

विवाद कर रहे थे। जाने दो इस अप्रिय प्रसंग को यहाँ क्यों छेड़ा जाय।

अत्यन्त संघर्षण के अन्त में मैंने यह निश्चय किया कि अब मरने के संकल्प को मुझे त्याग देना चाहिये। यह निश्चय मैंने मृत्यु से डर कर किया या और किसी कारण से किया इस विषय में मैं कुछ नहीं कह सकता, किन्तु यह दृढ निश्चय कर लिया कि अब मरना नहीं है।

फिर मेरे मन में विचार आये। बड़ी अपकीर्ति होगी, लोग थूकेंगे, कहेंगे, बड़े गोरक्षक बनते थे, करालो गोरक्षा, मरना सुगम नहीं है। गोरक्षा किये बिना मैं कैसे लोगों को मुख दिखाऊँगा। मैंने जो प्रतिज्ञा की थी कि या तो गौ ही बचेंगी या मेरी मृत्यु ही होगी। गौओं का वध होते हुए जीना मरने से भी बुरा है। परन्तु इन विचारों से मेरे निश्चय में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। सोचा—अब जो भी कुछ होगा, सब सहेंगे, अब प्राणों की रक्षा करेंगे।

दूसरे दिन भारतवर्ष भर के समाचार पत्रों में मेरी गम्भीर स्थिति का समाचार छपा। देश विदेश से सहस्रों पुरुष देखने दौड़ पड़े। अस्पताल की गाड़ी भी आ गयी। जिलाधिकारी भी आ गये देहली आदि से मेरे स्नेही बन्धु भी आ गये। अब मेरे शुभचिंतकों ने मेरा गोलोक में रहना निरापद नहीं समझा। वे मुझे मेरी इच्छा के विरुद्ध उस पार वृन्दावन स्थित हमारे संकीर्तन भवन में ले गये। अधिकारी गण गाडी लेकर साथ-साथ थे। स्यात् उनकी इच्छा मुझे चिकित्सा के निमित्त मथुरा जिला चिकित्सालय में भी ले जाने की रही होगी, किन्तु इतनी भीड़-भाड़ के सम्मुख उन्होंने अपनी इच्छा व्यक्त नहीं होने दी मैं इस पार वंशीवट संकीर्तन भवन के अपने निवास स्थान में आ गया।

मेरे सभी स्नेही बन्धु नहीं चाहते थे, मै मर जाऊँ, वे, सब प्रकार से मुझे जीवित देखना चाहते थे। इस अनशन में ही मुझे पता चला लोगों की कितनी मेरे ऊपर कृपा है, कितने लोग मेरे लिये व्यथित, चिंतित और उद्विग्न हैं। हमारी एक माताजी ने भरे हुए कण्ठ से मुझसे कहा—"महाराज ! मेरी एक प्रार्थना स्वीकार करोगे ? आप अपने प्राणों की रक्षा करें गौ की रक्षा तो हो ही जायगी। थोड़ा फलों का रस पी लीजिये।" मै स्वयं भी निश्चय कर चुका था, माता के कहने पर मैंने रस ले लिया। किन्तु मुझे शरीर को सुधि-बुधि नहीं थी। मृत्यु मेरे चारों ओर मंडरा रही थी। मुझे कितना कष्ट है, इसे मै व्यक्त नहीं कर रहा था। ऐसा लगता था; मृत्यु अब आ जाय। घुटनों तक पैर शून्य हो गये थे, मस्तिष्क फटा जा रहा था, नींद का नाम नहीं, मैने किसी से कहा भी नहीं। कहूँगा तो सैकडों डाक्टर वैद्य आवेंगे। अपनी-अपनी औषधि बतावेंगे, जिसकी न करो वही बुरा मानेगा। एक अंगरेज ने अपने भारत भ्रमण का सार लिखा था—"भारत में प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर के सम्बन्ध में कुछ न कुछ चर्चा कर सकता है और प्रत्येक को कुछ औषधियाँ याद है। आप किसी भी बीमारी को लेकर चौराहे पर बैठ जाइये। जो आवेगा वही उसकी एक दो औषधि बता जायगा।"

मैं अपनी प्रकृति को, अपने रोग को, उसके निदान को, उसकी चिकित्सा को स्वयं जानता था। मैं स्वयं थोड़ी बहुत वैद्यक जानता हूँ, कम से कम ३०-४० वर्ष से अपनी चिकित्सा अपने आप करता आ रहा हूँ। उन माता ने एक अच्छे अनुभवी वैद्य को मेरे पास रख दिया। उन माँ के वे वैद्यजी अत्यन्त भक्त हैं, वयोवृद्ध तथा अनुभव वृद्ध हैं, वे रात्रि में मेरे पास रहते। उन्होंने राई भर मकरध्वज, सितोपलादि चूर्ण मुझे शहद में दे दिया।

३५-३६ दिन का अनशन, पेट में पानी की एक बूंद भी नहीं टिकी थी, कैसी भी औषधि जाती वही विष का काम करती, किन्तु इसके लिये बड़ी सावधानी बरतनी थी।

मेरी मरणासन्न दशा सुनकर तुरन्त उसी दिन बम्बई कलकत्ता आदि से बहुत से बन्धु आ गये। संघ के गुरुजी भी तुरन्त उसी दिन पहुँच गये। मैंने उनसे कहा—"अब तो मैंने अनशन समाप्त करने का निश्चय कर लिया है।"

उन्होंने कहा—"समाप्त तो करना ही है। किन्तु अभी २-४ दिन और ठहर जायं सबसे सम्मति कर लें।"

मैंने कहा—'मेरी दशा अत्यन्त सोचनीय है, मैं किसी डाक्टर या अन्य वैद्य की चिकित्सा तो कराऊँगा नहीं। अब मैं ठंडा जल न पीकर गरम नमक नीबू का जल पिया करूँगा, औषधि लूँगा, चाहें आधी रत्ती ही लूँ, पैरों में मालिश कराऊँगा।"

उन्होंने कहा—"हाँ, औषधि लेने में क्या हानि है।"

तुरन्त मैंने यमुना जल गरम कराया एक सेर का जलते-जलते पाव भर रह गया। उसमें नमक नीबू मिलाकर वह जल पीया। वह गरम जल पच गया। उसने आहार का भी काम किया। पहिले जिन्हें मोतीझरा (टाइफाइड) हो जाता था उन्हें चौथाई औटाया हुआ जल ही दिया जाता था। वह आहार का ही काम देता था। वैद्य लोग ८०-८० दिन का उपवास कराते थे। मैंने भी ऐसा ही जल लेना प्रारंभ किया। शून्य हुए पैरों पर कायफल की निरन्तर मालिश करायी। अगहन पौष का महीना था, उस वर्ष एक तो वैसे ही जाड़ा कड़ाके का पड़ रहा था, दूसरे मैं ३५-३६ दिनों तक उस बरफ की भाँति गीली कुटिया में सोया था नस-नस में सरदी भर गयी थी। चौबीसों घंटे अग्नि मेरे कमरे में जलती रहती। और निरन्तर अजमाइन का

धूंआ मे कराता रहता। दिन भर में लगभग आधा सेर तीन पाव अजमाइन थोडी-थोड़ी कर जल जाती। जैसे प्राचीन काल में किसी प्रसूतिका के प्रसव गृह में धूनी आदि उपकरण किये जाते वैसा ही मेरा निवास स्थान हो गया था। सिकाई, निरन्तर की मालिश, औषधि से मुझे कुछ आराम मिला चेतना आई। रात्रि के ३ बजे मेरे पैरों की शून्यता में कुछ अन्तर पड़ा। थोड़ी सी निद्रा भी आई, घबराहट कम हुई। मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि तीन दिन जो मृत्यु छाया की भांति मुझे घेरे हुए थी, वह लौटकर चली गयी। मेरे समीप ही जो सूरज रतन मोहता सोये हुए थे, मैंने कहा—"भैया! अब तो मृत्यु लौट गयी, अब मै मरूंगा नहीं।"

मेरी दशा सुनकर बहुत से समाचार पत्रों के संवाददाता आते। मथुरा से तुरंत 'अमर उजाला' 'सैनिक' के सम्पादक आ गये। मुझसे उन्होंने पूछा—"आप कब अनशन समाप्त करेंगे?" मैंने कहा—"अब तो अनशन समाप्त सा ही है, जब मैं औषधि लेने लगा तो अब अनशन क्या रहा? मेरे साथी मेरी समिति के सदस्यों से सम्मति करने देहली गये हैं।"

दूसरे दिन उन्होंने बड़े अक्षरों में छाप दिया, ब्रह्मचारीजी का अनशन समाप्त ही हो रहा है। समिति के लोग इस पर गंभीरता से विचार कर रहे हैं।

जो आता उसी से मैं ऐसी बातें कह देता। "मैं स्वयं तो अपने को चैतन्य समझता किन्तु कभी-कभी अचेतन हो जाता और जो मुख में आता वही बोल जाता।" यह बात मेरे साथियों को बड़ी असह्य लगी।

उन्होंने कहा—"महाराज, आप एक सप्ताह के लिये काष्ठ

मौन हो जाइये। न बोलिये, न लिखिये, न समाचार पत्र पत्रिकायें चिट्ठी पत्री, तार पढ़िये। चुपचाप पड़े रहिये।"

मैंने सब की बात मान ली। सात दिनों तक न मैं किसी से बोला, न लिखा न पत्र तार तथा समाचार पत्र ही देखे। मुझे पता ही नहीं संसार में क्या हो रहा है।

कुछ लोगों ने कहा भी—थोड़ा फल रस-सार (ग्लूकोस) ले लिया करें, किन्तु मैने उसे स्वीकार किया नहीं। मैंने आज तक उसे कभी लिया ही नहीं। नमक नीबू पड़े गरम यमुना जल ने मेरे प्राणों की रक्षा की। यमुना जल एक तो वैसे ही भारी होता है, फिर सेर का पाव भर जलाते-जलाते रह जाय नमक और नीबू का रस पड़ जाय, तो वह जल सामान्यतया बहुत ही हलका आहार हो जाता है। सभी राजनैतिक अनशन करने वाले ऐसा जल लेते हैं, मेरे साथी भी लेते थे मैंने ही इतने दिनों नहीं लिया। ठंडा जल पचता ही नही था, यह जल पचने लगा। वैद्य जी बहुत ही न्यून मात्रा में दूसरे तीसरे दिन औषधि देते, उसके अनुपान के रूप में थोड़ा अनार का रस। अजमाइन की धूनी ने रामबाण का काम किया। नस-नस में व्याप्त सरदी को उसने शनैः-शनैः निकाल दिया।

--अब यही बात रह गयी, कि निद्रा नहीं आती थी। पूरी रात्रि जाग कर काटनी पड़ती थी। भाईजी हनुमान प्रसाद जी पोद्दारजी ने जब मेरी ऐसी दशा सुनी तो उन्होंने निद्रा लाने की तुरन्त एक औषधि भेजी, रज्जू भैया ने भी जब सुना तो वे भी लखनऊ से बहुत खोजकर निद्रा आने की औषधि लाये। परन्तु मैंने उन दोनों में से एक को भी नहीं खाया।

मैंने अनिद्रा की औषधि के सम्बन्ध में एक कहावी सुनी थी। हमारे इटावे जिले में एक बड़े ही निस्पृही त्यागी पुराने समय

के वैद्य थे। वे रोगियों को औषधि तो देते थे, किन्तु किसी से एक पैसा भी नहीं लेते थे। ऐसे त्यागी निस्पृही वैद्यों के हाथों में यश होता है, वे जिस रोगी पर भी हाथ डाल देते हैं, वह अच्छा होता है। ऐसे लोगों को धन की प्राप्ति चाहे न हो, उनकी कीर्ति चारों ओर फैल जाती है। उन वैद्यजी की भी कीर्ति चारों ओर फैली हुई थी।

एक बार वे वैद्यजी श्रावण में अमरनाथ की यात्रा को गये। अमरनाथजी के दर्शन उन दिनों वर्ष में एक दिन रक्षाबंधन के ही दिन होते थे। सब यात्री पैदल जाते थे, राज्य की ओर से समस्त यात्रियों के भजनादि का सब प्रबंध होता था। जो न करना चाहे उसकी बात दूसरी है। ये वैद्यजी भी पैदल-पैदल यात्रा को गये। हिमनिर्मित अमरनाथजी के दर्शन करके श्रीनगर में लौट कर आ गये। उन दिनों कश्मीर के महाराजा को अनिद्रा रोग हो गया था। ३-४ दिनों से उन्हें तनिक भी निद्रा नहीं आयी थी बड़े-बड़े आधुनिक अंगरेज चिकित्सक (सिविल सर्जन) आते, भाँति-भाँति की औषधियाँ देते, किन्तु कोई भी महाराज को सुलाने में समर्थ नहीं था।

वैद्यजी ने भी सुना। वे साधारण देहाती से थे, एक मैली अँगरखी, मैली धोती पहिने, पगड़ी बाँधे कंधे पर खुरजी लटकाये हुए थे। खुरजी में लोटा डोरी कुछ भोजन का सामान, एक धोती एक अँगरखी कुछ औषधियाँ लिये रहते थे। महाराज की ऐसी दशा सुनकर उन्हें दया आ गयी। उन्होंने महाराज को देखने की इच्छा की। तुरंत यह समाचार महारानी को मिला। स्त्रियाँ तो बड़ी श्रद्धालु होती हैं फिर भारतीय स्त्रियाँ अपने पति के जीवन के लिये सब कुछ कर सकती हैं। महारानी ने समाचार सुनते ही तुरंत वैद्यजी को बुलवाया। ये खुरजी कंधे पर

लटकाये हुए पहुँच गये महारानी ने उठकर उनका सत्कार किया, प्रणाम की और बैठने को कुरसी दी। संकेत से वैद्यजी ने पूछा—"मैं महाराज की नाड़ी देख सकता हूँ।"

रानी ने स्वीकृति दे दी। महाराज करवट के बल पड़े थे, पीठ वैद्यजी की ओर थी, उसी दशा में धीरे से वैद्यजी ने उनकी नाड़ी देखनी चाही ज्यों ही उन्होंने हाथ पकड़ा, महाराज ने इस ओर करवट बदला। अपने सम्मुख कुरसी पर एक मैले कपड़े पहिने देहाती जैसे व्यक्ति को देखा, तो उन्हें बड़ा क्रोध आया। तुरन्त उन्होंने हाथ खींच लिया। वैद्यजी उनके अभिप्राय को समझ गये, महाराज के दिन अच्छे थे, वैद्यजी क्रुद्ध नहीं हुए उन्होंने महारानी से कहा—"महारानी जी! महाराज जब मुझे छूने से ही घृणा करते हैं, तो मेरी औषधि तो खाने ही क्यों लगे।" किन्तु मैं एक औषधि देता हूँ, उसे आप बत्ती में लपेट कर घी का दीपक जलाकर महाराज के सम्मुख रख दें, उन्हें दीपक की लौ की ओर देखते रहने को कहें—"भगवान् ने चाहा तो निद्रा आ जायगी।" ऐसा कह कर औषधि देकर वैद्यजी चले गये। रानी ने तुरन्त वैसा ही किया। महाराज से प्रार्थना की आप इस दीपक की ओर देखते रहें। राजा देखते रहे। देखते-देखते उन्हें निद्रा आ गयी और पूरे ६ घन्टे तक सोते रहे।

छैं घन्टे पश्चात् जब उनकी निद्रा भङ्ग हुई, तब उन्होंने देखा हाथ जोड़े हुए महारानी गद्गद कंठ से भगवान् की स्तुति कर रही हैं।

उठते ही महाराज ने पूछा—"वह देहाती कौन-था, कहाँ चला गया। उसे मेरे पास बुलाओ।"

रानी का हृदय भरा हुआ था। वह कृतज्ञता के बोझ से दबी हुई थी। राजा की ऐसी बात सुनकर उन्होंने प्रेम के कोप

मुझे ज्ञान नहीं था। मैंने कपूर लगवाकर अपने सामने रात्रि भर घी का दीपक जलवाया। दो तीन दिनों के पश्चात् मुझे निद्रा आने लगी।

उन दिनों मेरी विचित्र दशा हो गयी थी, जिस विषय पर सोचता था उस विषय पर सोचता ही रहता था। जो धुनि मुझे चढ जाती उसी के पीछे पागल हो जाता। निरन्तर उसी के पक्ष विपक्ष में सोचता रहता।

संघ के गुरुजी से न जाने क्यों मेरा अत्यधिक अनुराग है, इस जन्म में तो मेरा, उनका ऐसा कभी विशेष संपर्क हुआ नहीं। पूर्व जन्म का कोई सम्बन्ध है, जन्मान्तरीय संस्कार है। उन दिनों इनके प्रति मेरा प्रेम पराकाष्ठा का उमड़ पड़ा था। उनके ही सम्बन्ध में सोचता रहता। किसी व्यक्ति ने किसी सार्वजनिक सभा मे उनके प्रति कुछ अपशब्द कह दिये थे। उस समय उनकी ऐसी तीव्र प्रतिक्रिया हुई, कि मैं उस व्यक्ति को गाली देने लगा। मेरा पागलपन पराकाष्ठा पर पहुँच गया।

रज्जू भैया के विषय में मैं क्या कहूँ, वे तो अपने आत्मीय ही हैं. अनशन के अन्तिम दिनों में उन्होंने कितना अत्यधिक श्रम किया वे सब कहने की बात नहीं, कहने से उन बातों का महत्व घट जाता है। वे मुझे बार-बार समझावें, डांटे भी—"महाराज जी आप यह क्या कर रहे हैं। चालीस वर्ष तक मौन रहकर किसी के लिये गाली निकाल रहे हैं, कोई सुनेगा तो क्या कहेगा।" मैं तुरन्त अपने कान पकड़ता, जीभ दांतों से काटता। अपना दोष स्वीकार करता। किन्तु अन्त में वे ही शब्द फिर निकल जाते।

उन दिनो दान करने की मेरी वृत्ति इतनी विकसित हो गयी थी, कि सोचता था क्या दे डालूँ क्या दान करा दूं। औदार्य वृत्ति

जाग्रत हो गयी थी। सोचता था, इस अवसर पर कम से कम सवा लाख रुपये का दान तो हो ही जाय। मेरा जो भी समर्थ परिचित आता, उसी से कुछ न कुछ दान कराने को कहता। कोई तो पागलपन समझ कर टाल जाते। कोई शक्ति अनुसार दान के लिये दे भी जाते। इच्छा होती थी, दिन भर कुछ न कुछ बटता रहे, दिन भर लोग खाते पीते रहें, मैंने चना भिगोकर छुँकवा कर दिन भर बटवाता जितनी ही वस्तुएँ बँटती उतनी ही मुझे प्रसन्नता होती। भंडार में मैंने कहला रखा था, पुलिस हो, गुप्तचर हो, दर्शक हों जो भी कोई आजाय, सबको भोजन कराओ, सबको चाय पिलाओ। सवालाख तो नहीं, फिर भी मेरे कृपालु स्नेही बन्धुओं ने मेरी मंगल कामना के निमित्त मुक्तहस्त होकर द्रव्य दिया। तभी तो ७२ दिनों तक यह महोत्सव धूमधाम से चलता रहा।

मुझे तो मौन कर दिया, किन्तु हमारे साथी अनशन समाप्ति में एक मत होते ही नहीं थे। अधिकांश लोगों की सम्मति थी इसे अभी और चलाया जाय। जिससे जनता में जागृति बनी रहे।

मेरे निवास स्थान पर समिति के समस्त प्रतिष्ठित-प्रतिष्ठित सदस्यों नेताओं की बैठक हुई। उसमें भी प्रस्ताव रखा गया, "अब अनशन समाप्त कर दिया जाय।"

इस पर एक सज्जन बोले—"यह तो बड़ी अपयश की बात होगी। कौन इसे अपने ऊपर लेगा?"

इस पर गुरुजी गोलवलकरजी ने कहा—"इस अपयश को मैं अपने सिर पर लेने को तैयार हूँ। मुझे किसी से मत (वोट) की भीख तो माँगनी ही नहीं है। मैं स्थान-स्थान पर कहता फिरूँगा, मैंने अनशन समाप्त कराया है। आप लोग भी कह दिया करें—' इस दाढ़ी वाले ने ही ऐसा किया है।" किन्तु बात

कुछ बनी नहीं। दो एक को छोड़कर सभी की सम्मति यही रही अनशन चलाया जाय।

मुझे बडो आन्तरिक ग्लानि हो रही थी, मै कर रहा हूँ कुछ, लोगों पर प्रकट कुछ और ही करता हूँ, यह तो दभ है, छल है, कपट है, विश्वासघात है। ओषधि लेने से, नमक नीबू का गरम जल लेने से मेरे स्वास्थ्य में कोई अन्तर नहीं पड़ा था, फिर भी यह विषम परिस्थिति थी।

जिस दिन मेरे साथी अहूजा का देहान्त हुआ उस दिन मुझे बड़ी पीड़ा हुई। मैने सोचा—देखो, मैने उसे तो मरने दिया, अपने आपको बचा लिया। किन्तु मैं विवश था, अपने साथियों सहयोगियों से ऐसे समय विद्रोह करना मुझे अच्छा न लगा।

जब मैंने देखा, कुछ लोग २-२-४-४ दिन करके इस स्थिति को चुनाव तक खीच ले जाने की सोच रहे हैं, तब मै अब अधिक दिन अपने को इस विषम परिस्थिति में नही रख सका। मैंने घोषणा कर दी। मैं अमुक तिथि को अनशन समाप्त कर दूंगा। तब तो सब विवश हो गये। निश्चित तिथि को बड़ा भारी समारोह हुआ पत्रकार, चित्रकार, समिति के सदस्य, दर्शक तथा समस्त शुभ चिंतकों के सम्मुख मैने गौ का दूध लेकर इस स्थिति का अंत कर दिया।

बात तो कहने के लिये बहुत-सी हैं, इतिहास तो बहुत बड़ा है, किन्तु मै यहाँ इतिहास लिखने नहीं बैठा हूँ, मुझे तो अपनी वास्तविक स्थिति बनानी थी। मेरा हृदय मुझे तभी से निरंतर कचोटता रहता था, कि मुझे अपनी यथार्थ परिस्थिति सब पर प्रकट कर देनी चाहिये। एक उर्दू के कवि ने कहा है—

दोस्त मेरा मुंह न देखें उनको गर मालूम हो।
उनसे क्या कहता रहा और आप क्या करता रहा॥

जब कोई कहता है महाराजजी ने ७२ दिन अनशन किया है, तो मुझे आन्तरिक पीड़ा होती है। वास्तविक बात यह है कि ३५ या ३६ दिन तो मेरा विशुद्ध धार्मिक अनशन रहा। शेष ३६ दिन कहने को तो वह अनशन ही था, शास्त्रीय दृष्टि से भी नीबू के रस सहित जल लेने और ओषधि लेने से अनशन में कोई अन्तर नहीं, किन्तु मै उसे वास्तविक अनशन न कहकर ३६ दिन के अनशन को राजनैतिक अनशन ही कहूँगा। वह भी मैंने स्वेच्छा से नहीं परेच्छा से किया। अपने साथियों, सहयोगियों, मित्रों के आग्रह से सहयोग से किया। मै चाहता तो ३६ वें दिन ही इसकी घोषणा कर सकता था, किन्तु मै अपने सहयोगियों के सहसा विरुद्ध जाने में हिचकता था। अतः मेरा सभी बन्धुओं से यही अनुरोध है, कि मुझे पूरा अनशनकारी न मानकर आधा ही अनशनकारी मानें।

बस, अब यहीं पर मैं अपनी इस अपनी निजी चर्चा को समाप्त करता हूँ।

छप्पय

जब लिखवायौ प्रभो ! तबहिँ लिखिकें जतलायौ।
जैसो जो कछु करयो नाथ ! तैसो बतलायौ ॥
पाप पुन्य जो भयो क्षमा करि सेवक मानो।
अन्तरजामी देव ! आपु घट-घट की जानो ॥
भटक्यो अब तक बहुत हूँ, अब तो अपनाओ विभो !
मेरे तो सरबसु तुमहिँ, जैसो हूँ तुमरो प्रभो !!

गीता-माहात्म्य

[१२]

गीतायाः द्वादशोऽध्यायः सर्व सिद्धिकर स्मृतः ।
ये पठन्ति सदा प्रेम्णा, तेषां कश्चिन्न दुर्लभः ॥ [*]
(प्र० द० ग्र०)

छप्पय

अब द्वादश अध्याय महातम गीता को सुनि ।
कोल्हापुर शुभ नगर देवि थल बसत एक मुनि ॥
नित द्वादश अध्याय पाठ करि होवैं हरषित ।
पाठ करन तें शक्ति बढ़ी तिनिकी अद्भुत अति ॥
आयो राजकुमार इक, दरशन देवी के करे ।
करि प्रनाम इस्तुति करी, नेह नीर नयननि भरे ॥

देवताओं को परोक्षप्रिय कहा गया है । वे स्वयं वरदान बहुत कम देते है, किसी न किसी अपने भक्त को वे निमित्त बना कर वर देते हैं । भक्तों में जो शक्ति है वह भी उन्हीं की दी हुई है, किन्तु भगवान् अपनी प्रतिष्ठा से उतने प्रसन्न नहीं होते, जितने प्रसन्न अपने भक्तों की प्रतिष्ठा से होते हैं । करते-कराते सब

---

[*] गीता का बारहवाँ अध्याय सभी सिद्धियों को देने वाला कहा गया है । जो पुरुष सदा इसे प्रेम से पढ़ेंगे उनके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है ।

भगवान् ही हैं, किन्तु भक्तों को निमित्त बना लेते हैं। जिससे लोग कहें अमुक भगवद् भक्त ने ऐसा अद्भुत कार्य किया। भगवान् ने यही बात अर्जुन से महाभारत युद्ध के समय कही थी—"देखो, अर्जुन! भीष्म, द्रोण, जयद्रथ, कर्ण तथा अन्यान्य वीरों को मैं मन से पहिले ही मार चुका हूँ, अब तुम इन मरे हुओं को मार कर यश उपार्जित करो। भगवान् अपने भक्तों के हित की बात पहिले ही सोच लेते हैं। भगवान् जानते थे जरासंध जीता रहेगा, तो पांडवों का यश चारों ओर न फैलेगा–वे राजसूय जैसा महान् यज्ञ नहीं कर सकेंगे, अतः उन्होंने भीम द्वारा उसे मरवा दिया। इसी प्रकार वे जानते थे एकलव्य यदि जीता रहेगा, तो उसे कोई जीत न सकेगा, अतः द्रोणाचार्य के द्वारा उसका अँगूठा कटवा दिया और फिर भी उसका वध स्वयं कर दिया। भीष्म-पितामह के पास पांडवों को ले गये और उनसे प्रार्थना की—"ये धर्मराज गद्दी पर नहीं बैठते इनको धर्म का उपदेश करो।" जब भीष्मपितामह ने कहा—"आप ही उपदेश क्यों नहीं करते।" तब भगवान् ने कहा—"मैं उपदेश कर सकता हूँ, किन्तु मुझे अपने भक्तों का यश सुनकर आन्तरिक प्रसन्नता होती है। जब लोग धर्म के विषय में आपके शब्दों को प्रमाण मान कर उद्धृत करेंगे, कि इस विषय में भीष्मपितामह का ऐसा मत है, तो मुझे प्रसन्नता होगी। मै अपनी शक्ति देकर ही भक्तो के यश को बढ़ाया करता हूँ। वास्तव में राजा का सेवक राजा के ही पान को लगा कर राजा को अर्पण करता है। राजा उसकी प्रशंसा करता है। पिता पुत्र को द्रव्य देता है, जब पुत्र उससे कोई शुभ कर्म करता है, तो और लोगों के साथ पिता भी उसके शुभ कर्म की प्रशंसा करता है। यदि पिता-पुत्र को द्रव्य न देता तो असमर्थ पुत्र उस शुभ कर्म को कर ही नहीं सकता था। फिर भी पुत्र के यश को सुनकर

प्रसन्न होने वाला पिता उसे यशस्वी बनाने में उसके गौरव की वृद्धि में स्वयं सहयोग देता है। समस्त शक्तियों को देने वाली तो जगज्जननी भगवती महालक्ष्मी ही हैं, किन्तु वे स्वयं वर न देकर अपने आश्रित भक्तो से ही वर दिलाती है।

भगवती लक्ष्मी जी के पूछने पर जैसे भगवान् विष्णु ने और पार्वती जी के पूछने पर जैसे शिवजी ने गीताजी के द्वादश अध्याय का महात्म्य कहा था उसे आप लोग ध्यान पूर्वक सुनें। महाराष्ट्र प्रदेश में कोल्हापुर नामक एक बड़ा ही समृद्धशाली पावन नगर है। प्राचीन काल में वहाँ बड़े-बड़े सिद्ध महात्मा निवास करते थे। उसे दक्षिण की काशी भी कहते हैं। दक्षिण का वह सुसिद्धतीर्थ है। जैसे पूर्व में पितरो के लिये गया है वैसे ही दक्षिण में यह रुद्र गया है। यहाँ आकर लोग अपने पितरों का श्राद्ध करते हैं। देश में भगवती की जो ५१ पीठें हैं, उनमें से कोल्हापुर भी भगवती पराशक्ति लक्ष्मी जी का प्रधान पीठ है। वहाँ शिव मंदिरों की भरमार है। यह पुराण प्रसिद्ध तीर्थ सम्पूर्ण भोगों को तथा मोक्ष को प्रदान करने वाला है। भगवती पराशक्ति लक्ष्मी जी की सेवा के निमित्त उनके सान्निध्य में और भी बहुत से देवगण उस पावन क्षेत्र में निवास करते हैं। पराशक्ति भगवती महालक्ष्मी के दर्शनार्थ वहाँ दूर-दूर से यात्री आते ही रहते हैं।

एक दिन किसी राज्य का राजकुमार देवी के दर्शनों के लिये उस पुण्य क्षेत्र में आया। राजकुमार अत्यन्त ही सुन्दर था। तपाये हुए सुवर्ण के समान उसके शरीर का वर्ण था। वह देखने में अत्यन्त ही मनोहर प्रतीत होता था। कमल के समान विकसित बड़े-बड़े उसके नेत्र थे। शङ्ख के सदृश शोभायमान सुंदर उसकी ग्रीवा थी, दोनों कन्धे तथा मांसल भरे हुए थे। उसका वक्षःस्थल

विशाल तथा चौड़ा था। उसकी आजानु लम्बी-लम्बी भुजाय थे। उसके मुख मण्डल पर स्वाभाविक मुस्कान हर समय छिटकी रहती। उसकी चाल मत्तगयन्त के सदृश थी। देखने वाले उसके रूप को देखते के देखते ही रह जाते थे।

उसके नगर में प्रवेश करते ही लोग उसको उत्सुकता के साथ देखने लगे। नगर में आकर उसने विशाल भवनों, ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं तथा दीर्घ गोपुरों वाले विशाल मन्दिरों को देखा। सर्वप्रथम वह मणिकण्ठ तीर्थ में गया, वहाँ उसने विधि पूर्वक स्नान किया, सन्ध्या वन्दन नित्य कर्मों से निवृत्त होकर अपने पितरो का तर्पण किया। इन सब कार्यों से निवृत्त होकर वह देवेश्वरी महालक्ष्मी जी के दर्शनों के लिये अत्यन्त उत्कंठित होकर उनके मंदिर की ओर चला। मंदिर में पहुँच कर उसने भक्ति भाव पूर्वक भगवती को साष्टांग प्रणाय किया। देवी जी की शोभा अनुपम थी। राज कुमार भक्ति भाव भरित हृदय से देवी जी की स्तुति करने लगा। राजकुमार ने कहा—

छप्पय

[१]

जिनि जननी के हिये भरी है दया अपारा।
मनवांछित फल देहिं करें भक्तनि उद्धारा॥
देहिं कामना सकल जगत की जननी जो हैं।
जिनि तें ले अज शक्ति रचें जग देवी सो हैं॥
जगपालन अच्युत करत, रुद्र करें संहार हैं।
सर्व शक्ति सम्पन्न जो, तिनि पद पदुम प्रनाम हैं॥

[२]

पराशक्ति हे मातु! योगिजन तव पद ध्यावैं।
कमले! कमलानये! सकल इन्द्रिनि उपजावैं॥
मनकूं पैदा करें करें संकल्प सकल जो।
तुम ही इच्छा, ज्ञान, क्रिया की शक्ति निखिल सो॥
निष्कल, निरमल, निरामय, परम ज्ञान की रूपिनी।
नित्य निरंजनि देवि तुम, अन्तरहित सुखरूपिनी॥

[३]

तुम आलंबन हीन चराचरमय जग करत्री।
उतपति थिति अरु प्रलय करो जग भरत्री हरत्री॥
महिमा तुमरी कौन करि सकै बरनन जननी।
षट चक्रनि कूं भेदि थान बारह विहारिनी॥
बिन्दु, नाद, ध्वनि अनाहद, कला सकल जिनि रूप हैं।
पुनि-पुनि पद वन्दन करूं, जिनि अति दिव्य स्वरूप हैं॥

[४]

चन्द्र वदन तें मातु अमृत की राशि बहाओ।
पश्यन्ती अरु परा, मध्यमा तुमहिं कहाओ॥
तुमहिं बैखरी बनो जगत रक्षा हित माता।
धारो रूप अनेक सकल जग की माँ त्राता॥
तुमहिं वैष्णवी शक्ति हो, ब्राह्मी माहेश्वरि तुमहिं।
लक्ष्मी, ऐन्द्री, चण्डिका, कौमारी तुमई सबहिं॥

[५]

हो नरसिंही देवि महालक्ष्मी प्रभु-प्यारी।
सावित्री हो चन्द्र—कला जग की उजियारी॥
तुमहिं रोहिनी मातु अम्बिके! किरपा कीजे।
आयो तुमरी शरन कृपा करि दरशन दीजे॥

भक्त मनोरथ पूर्ण हित, कल्पलता सम मातु तुम।
करो कृपा करुनामयी, आये तुमरी शरन हम॥

इस प्रकार स्तुति करते-करते राजकुमार आत्मविभोर बन गया। उसके कमल सदृश नयनों से झर-झर प्रेमाश्रु बह रहे थे, उसकी वाणी स्खलित हो रही थी। शरीर में सभी सात्विक भावों का उदय हो रहा था। हृदय से की हुई स्तुति से भगवती महालक्ष्मी प्रसन्न हो गयीं। वे राजकुमार की मनोकामना पूर्ण करने के निमित्त उसके सम्मुख प्रत्यक्ष प्रकट हो गयीं। अपना साक्षात् स्वरूप धारण करके भगवती कहने लगीं—"राजकुमार! मै तुम्हारी स्तुति से अत्यंत ही सन्तुष्ट हूँ। तुम अपनी इच्छानुसार मुझसे जो भी चाहो वर माँग लो। मैं तुम्हारी इच्छा को पूर्ण करूँगी।"

माँ की ऐसी श्रुत मधुर कानों में अमृत घोलने वाली वाणी सुनकर राजकुमार के हर्ष का ठिकाना नही रहा। उसने बड़ी ही संयत वाणी में कहना आरंभ किया। माँ! मै एक संकट में पड़ा हुआ राजकुमार हूँ। मेरे पिता महाराज बृहद्रथ एक बड़े ही प्रतापशाली भूपति थे। उन्होंने एक अश्वमेध यज्ञ आरंभ किया था। पृथ्वी की दिग्विजय के लिये उन्होंने यज्ञीय अश्व छोड़ा था। यज्ञ अभी अधूरा ही था तभी तक दैव योग से उनकी किसी रोग से मृत्यु हो गयी। तभी समूची पृथ्वी की परिक्रमा करके घोड़ा भी लौट आया। सेवकों ने उस यज्ञीय अश्व को यज्ञ शाला के समीप गड़े हुए यूप से बाँध दिया था। न जाने किसने रात्रि के समय उस यज्ञीय अश्व की रस्सी काट कर उसे कहीं अन्यत्र भगा दिया। मैंने अश्व को खोजने के लिये चारों ओर सैनिक भेजे, किन्तु बहुत प्रयत्न करने पर भी वह अश्व नहीं मिला। जब तक अश्व नहीं मिलता, तब तक यज्ञ पूरा नहीं हो सकता। जब तक

यज्ञ पूरा न हो, तब तक पिता के मृतक शरीर के दाहादि कर्म भी नहीं किये जा सकते। अतः मैं अपने पिता के मृतक शरीर को तैल द्रोणी में रख कर, ऋत्विजों से आज्ञा लेकर आपकी शरण में आया हूँ। माँ ! आप दयामयी हैं, भक्तवत्सला हैं, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो मेरे यज्ञ का अश्व मुझे मिल जाय और मेरे पिता का यज्ञ पूरा हो जाय। पुत्र वही है जो पिता के ऋण से उऋण हो सके। हे जगज्जननी माँ ! आप वही कार्य करें जिससे मै अपने दिवंगत पिता की अभिलाषा को पूर्ण कर सकूं।" इतना कहते-कहते राजकुमार फूट-फूट कर रुदन करने लगा।

राजकुमार की करुणामयी विनय सुनकर जगज्जननी माँ भगवती महालक्ष्मी दयार्द्र हो उठीं और बोलीं—बेटा ! मेरे मंदिर के द्वार पर सिद्ध समाधि नाम के एक तपस्वी ब्राह्मण हैं। तुम उनकी शरण में जाओ। वहाँ तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो जायगा।

राजकुमार ने कहा—"जननी ! मैं तो आपकी ही शरण में आया हूँ।"

भगवती महालक्ष्मी ने कहा—"अरे, भैया तुम जाओ भी तो सही वे मेरी ही आज्ञा से तुम्हारे सब कार्य पूर्ण करेंगे। करूंगी तो मैं ही सब किन्तु मैं अपने उत्तम भक्त को निमित्त बनाकर सबके मनोरथों को पूर्ण किया करती हूँ।"

महालक्ष्मी की आज्ञा से राजकुमार सिद्ध समाधि नाम के मुनि की शरण में गये। महामुनि उस समय ध्यान में बैठे थे। राजकुमार ने उनके समीप जाकर उन्हें साष्टांग प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर चुपचाप उनके सम्मुख खड़े हो गये। थोड़ी देर के पश्चात् महामुनि सिद्ध समाधि ने राजकुमार की ओर